IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

स्वतंत्रता संग्राम में 'हिंदी सिनेमा एवं गीतों' का योगदान

डॉ अपर्णा सिंह[1]ए सुमित यादव[2]

विभागाध्यक्ष-भौतिकीए नेशनल पी0जी0 कॉलेजए लखनऊए[1]

बी0एस0सी(सेमेस्टर.5)ए नेशनल पी0जी0 कॉलेजए लखनऊ[2]

कला का संबंध सर्जन से है और मनुष्य ने अपने आरंभिक समय से इस सृजनात्मकता का परिचय दिया है। मानव सभ्यता के विकास के साथ कलारूपों का विकास होता गया। कला द्वारा मस्तिष्क और कल्पना को शिक्षित करने का अर्थ ऐसे ऐसे मस्तिष्क का निर्माण का करना है, जो मानवता के बेहतरीन तूफानों को पार करे, जहां से मनुष्य संकुचित विचारों से ऊपर उठ सकता है। सिनेमा कई कलाओं की समुचित विधा है। नृत्य, गीत, संगीत, अभिनय, चित्रकला सभी कलाएं इसमें समाहित हैं इसलिए सिनेमा आम जनता से आसानी से संवाद करने में सफल हुआ।[1]

आजादी के पहले का सिनेमा

किसी को भी अपना शुरुआती इतिहास याद नहीं रहता। क्या यह महज संयोग नहीं है कि शुरुआती दौर की बहुत ही कम फिल्में हमें याद हैं। बताया जाता है कि मूक दौर में 1288 फिल्में बनी थी लेकिन उनमें से मात्र 13 फिल्में ही राष्ट्रीय अभिलेखागार में मिलती हैं। बाकी को हम भूल गए या भुला दिया। कहा जाता है कि गर्भ काल और शिशु काल बहुत परतंत्र और कष्टमय होता है, इसलिए यह बेहतर है कि उसे भुला दिया जाए। प्रकृति ने कुछ ऐसी व्यवस्था कर रखी है कि हम स्वतः अपने बीज और शिशु दौर को भूल जाते हैं। वैसे उन दिनों में जो फिल्में आई, उनके नाम और परिचय तो हमें मिलते ही हैं और उनके दम पर भी हिंदी फिल्मों का इतिहास बनता है।[2]

सिनेमा का आरंभ

सिनेमा अपने आप में एक 'नए यथार्थ' का आरंभ है। भारतीय सिनेमा के आरंभ की बात करें तो इसकी शुरुआत मूक फिल्मों से हुई। 28 सितंबर 1895 को लुमियर बंधुओं ने एक ऐसी मशीन से दुनिया को परिचित कराया जो तस्वीरों को चलता हुआ दिखा सकती थी- अपनी धुन के पक्के लुमिया बंधुओं ने जब इस जादू को 7 जून 1896 को पहली बार लोगों को दिखाया तो लोगों ने दांतों तले अंगुलियां दबा ली। यह समय भारतीय जीवन के लिए हर दृष्टि से अभाव का समय था । रोटी कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी

चीजें व्यक्ति से कोसों दूर थी। ऐसे में सिनेमा का आना किसी अजूबे जैसा ही था। एक तत्व के अनुसार मुख्य में कुल 1288 फिल्मों का निर्माण हुआ। इन में से सिर्फ 13 फिल्में ही राष्ट्रीय अभिलेखागार में उपलब्ध है ।[3]

भारत में सिनेमा

सिनेमा एक ऐसा माध्यम है जो लगभग सभी कलाओं को एक साथ अपने आप में समाहित कर, उन्हें प्रस्फुटित होने का अवसर देता है। चाहे वह अभिनय हो, गीत हो, संगीत हो, नृत्य हो, साहित्य हो या पत्रकारिता हो और इसी कारण उस परतंत्र काल में अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों व गांधीजी के अहिंसा के आवाहन ने कई क्रांतिकारियों को पत्रकारिता व साहित्य की ओर मोड़ा । साहित्य के लिए अपने आप को पूर्ण रूप से प्रस्फुटित कर आम जनमानस तक प्रभावपूर्ण रूप से पहुंचने के लिए सिनेमा एक उत्तम माध्यम था इसी कारण उस काल में कई क्रांतिकारी लेखक व निर्माता हुए, जिन्होंने अपना विरोध सिनेमा के जरिए प्रदर्शित किया और परतंत्र को उखाड़ फेंकने के लिए सामान्य नागरिकों को प्रेरित किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति वह सन्धि रेखा कही जा सकती है जहां भारतीय सिनेमा 50 वर्ष का सफर तय करके आया था। मूलता आजादी के 30 वर्ष पहले से सही अर्थों में भारतीय सिनेमा की शुरुआत कही जा सकती है । देश में सिनेमा सन 1913 में आया जब दादा साहब फाल्के ने *राजा हरिश्चंद्र* नाम की फिल्म बनाकर इतिहास रचा और वह अमर हो गए। सन 1931 में प्रथम सवाक सिनेमा *आलम आरा* को दर्शकों ने पहली बार बड़े पर्दे पर बोलती हुई फिल्म के रूप में सुना और देखा था। इसके बाद से स्वतंत्रता तक के सिनेमा का इतिहास मुख्यतः राष्ट्रीय विचारों और नैतिकवादी दृष्टिकोण से प्रेरित था।[4]

समाजवादी चिंतक डॉ. राम मनोहर लोहिया ने फिल्मों के बारे में एक टिप्पणी की थी- *"भारत को एक करने वाली दो ही शक्तियां हैं, पहला गांधी दूसरी फिल्में।*" किंतु कितनी विचित्र बात है कि फिल्मों पर महात्मा का वैसा वरदहस्त कभी नहीं रहा, जैसा साहित्य एवं पत्रकारिता पर था। गांधीजी ने अपनी जिंदगी में शायद एक ही बोलती फिल्म देखी थी। 'रामराज्य' वह भी गीतकार रमेश गुप्ता द्वारा इसके गीत सुनने के बाद। गांधी के जीवन का यह द्वंद वस्तुतः संपूर्ण मध्यवर्गीय भारतीय जनमानस का द्वंद था। मध्यवर्गीय परिवारों में यदि कोई युवा अच्छी पुस्तकें पढ़ता था तो जहां उसे प्रोत्साहन मिलता था, वही अच्छी फिल्में देखने पर भी फटकार की उम्मीद रहती थी।

किसी देश की सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक परंपरा का परिचय प्राप्त करने के लिए जिन साधनों का सहारा लिया जाता है, उनमें नाट्य कला एवं सिनेमा का विशिष्ट स्थान है ।[5] भारतीय सिनेमा के राष्ट्रीय आंदोलन में कोई भूमिका थी या नहीं, या जांचने का काम कभी गंभीरता से नहीं हुआ है। अब तक जो तथ्य सामने आए हैं, उसी से तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राष्ट्रीय सिनेमा की धारा कमजोर भले ही रही हो लेकिन गैर महत्वपूर्ण कदापि नहीं थी ।[6] देश की जनता ने चाहे आजादी से पहले का समय हो या आजादी के बाद का समय हमेशा हिंदी सिनेमा में अपनी रुचि दिखाई है क्योंकि हिंदी सिनेमा ने उनके अंत:करण को जागृत करके उन्हें सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक विरोधियों से लड़ने एवं दूर करने योग्य बनाया।

हमारे गुलाम देश में महायुद्ध के कारण एक नए रूप से राजनीतिक चेतना जागृत हुई जिससे उसके विद्रोह ने अपनी निश्चित दिशा का वास्तविक ज्ञान पाया। युद्ध के प्रारंभिक वर्षों में बाम्बे टाकीज देश के जवान दिलों पर हुकूमत करती थी। देश में सिनेमा का प्रचार इस जमाने में बहुत अधिक हुआ। सन 1942 में ऐतिहासिक अगस्त क्रांति हुई। अपना खोया हुआ गौरव वापस पाने के लिए एवं महायुद्ध से प्रेरित होकर एक नए उत्साह के साथ बढ़ने के लिए करो या मरो की भावना को लेकर जनता ने अपने आक्रोश को कार्य रूप में परिणत किया। युद्ध के उत्तरकालीन चलचित्र में जो अधिकांशतः पौराणिक, ऐतिहासिक और धार्मिक थे, एक बात जो खासतौर पर देखने में आती थी वह थी, जोशीले राजनीतिक संवादों का होना। अंग्रेजों के लिए हर हिंदुस्तानी दिल में 1942 के बाद जो गुस्सा और नफरत भरी हुई थी, जिस आजादी के लिए वह लड़ा और बुरी तरह कुचला गया था, वह आजादी की भावना मरी नहीं।[7]

भारत में 5 मार्च 1918 को सिनेमैटोग्राफी एक्ट लागू किया गया। इस का संबंध विशेष रूप से देश की राजनीतिक चेतना से था, ना की सांस्कृतिक चेतना से। जहां भी अंग्रेजों को लगता था कि किसी फिल्म विशेष से स्वतंत्रता का संदेश फैलाने की कोशिश हो रही है, वही

सेंसर की कैंची का शिकार हो जाता। इसी से संबंधित एक घटना फिल्म *वंदे मातरम* के साथ हुई। अंग्रेजों के लिए वंदे मातरम शीर्षक राष्ट्रवादी चेतना को जगाने वाला था। इसलिए इस फिल्म के शीर्षक में *आश्रम* जोड़कर तसल्ली पा ली गई।

ऐसा नहीं था कि यह सब कुछ भारत में बनाई जाने वाली फिल्मों के साथ ही होता था उस समय भारत में अंग्रेजी फिल्में भी आने लगी थी। सेंसर बोर्ड फिल्म के संवादों पर सबसे तीखी निगाह रखता था। उसी दौरान एक फिल्म आई थी- *डच ऑफ डी यू एस ए* । इस फिल्म में एक संवाद था- *उन्होंने उस दिन का सपना देखा, जमीन की सरकार जनता द्वारा चुनी जाएगी और जनता के लिए काम करेगी* । ब्रिटिश सरकार ने स्वतंत्रता की भावना से ओतप्रोत इस वाक्य को बदल दिया -*उन्होंने सपना देखा कि उनके देश में शांति और संतोष छा गया।* इसी प्रकार स्वयं अपने देश की ही बनी एक *फिल्म द फ्लाइट कमांडर* के इस वाक्य को तो पूरी तरह से हटा दिया गया था-*साथियों, हम कब तक इन विदेशियों का हस्तक्षेप बर्दाश्त करते रहेंगे।*

अंग्रेजों प्रथम विश्व युद्ध के दौरान सिनेमा का इस्तेमाल अपने पश्चिमी प्रोपेगेंडा के रूप में जहां किया था, वही रूसी क्रांति के फलस्वरूप 1917 में रूस द्वारा साम्राज्यवादी युद्ध से अलग हो जाने पर सिनेमा को उन्होंने बोल्शेविज्म के खिलाफ प्रचार के लिए भी इस्तेमाल करने का प्रयास किया। शायद सिनेमा के ताकत के एहसास ने ही, युद्ध के अंतिम चरण में यानी 1918 में अंग्रेजों को *इंडियन सिनेमैटोग्राफी एक्ट* पारित करने के लिए बाध्य किया। इसके तहत सार्वजनिक प्रदर्शन से पूर्व हर फिल्म को सेंसर बोर्ड से प्रमाण पत्र लेना आवश्यक था। यह सेंसर परोक्ष रूप से पूरी तरह राजनीतिक था और किसी भी राजनीतिक आंदोलन, व्यक्ति या घटना का चित्रण अथवा व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाने वाले कथानक पर बनी सिनेमा की नियति था, प्रतिबंधित होना अर्थात जब भारत में स्वतंत्रता की लड़ाई जन आंदोलन की शक्ल ले रही थी सिनेमा पर सेंसर की पाबंदियां लगा दी गई । दूसरे, सिनेमा बेहतर खर्चीला माध्यम है। 1916 में एक बार फिल्म बनाने के लिए गवर्नमेंट ट्रेजरी से 3000 पौंड की धनराशि व्यय करने की संतति दी गई थी। [9]

उस समय बिजनेस में टिके रहने का फार्मूला था- रोमांस आठ से दस गाने, फीयरलेस नदिया के स्टंट, माइथोलॉजी, सोशल ड्रामा और फेंटेसी। साफ तौर से उस दिनों के फिल्मकार ऐसा कोई काम नहीं करना चाहते थे, फिल्में नहीं बनाना चाहते थे, जिनके लिए उन्हें ब्रिटिश सरकार का एहसान लेना पड़े, क्योंकि दर्शक उन्हें नकार सकते थे, और सभी को महसूस हो रहा था कि उपनिवेशवादियों के दिन गिने-चुने ही हैं। ब्रिटिश राज के दौरान यह जुमला चलता था, राजनीतिक अस्थिरता का फिल्मों में कोई जिक्र नहीं होगा, सिर्फ निर्दोष मनोरंजन किया जा जाएगा, करिश्माई कलाकार, मेलोडी भरा संगीत, उत्तेजक संवाद और प्रेम कहानियां-दो तरफा या एक तरफा-टिकट खरीदने वाली दर्शकों को लुभाने वाली सारे पैंतरे, खोया-पाया, पारिवारिक रिश्तो में दरार और दौलतमंद और गरीब के बीच त्रिकोणीय प्रेम-इन सभी का इस्तेमाल दसकों बाद भी किया गया है।[10] अतः जाहिर कि उसमें काम करने वाले लोगों के लिए सत्ता से बैर लेना काफी महंगा था। आश्चर्य नहीं है कि ऐसे में राष्ट्रीय आंदोलन से जुडी फिल्में कम ही बनी, बावजूद इसके ऐसी ढेरों फिल्में बनीं, जिन्होंने राष्ट्रीय जीवन-भावना एवं द्वंद को अभिव्यक्ति दी।[11]

1931 में *आलम आरा* के प्रदर्शन के साथ ही भारत में बोलती फिल्मों का योग शुरू हुआ, यह समय था जब राष्ट्रीय आंदोलन गोलमेज सम्मेलन के उबरू दौर से गुजर रहा था और जनता बेचैन राष्ट्रीय नेताओं को निहार रही थी। इस समय हिंदी सिनेमा ने जनता की भावनाओं को पर्याप्त अभिव्यक्ति दी। भारत की दूसरी सवाक फिल्म का गौरव प्राप्त जागरण, ब्रिटिश सेंसर का शिकार हो गई। फिल्म का नाम उसके कथा का संकेत देता है। इसी दौरान कांग्रेस के क्रियाकलापों पर बनी फिल्म *कांग्रेस गर्ल*- जिसे नेशनल थिएटर ने बनाया था-भी जब्त हुई। घाटा इतना जबरदस्त हुआ कि फिल्म बनाने वाली कंपनी ही बंद हो गई। 30 और 40 के दशक में प्रभात, न्यू थियेटर्स एवं बाम्बे टॉकीज सरीखी फिल्म कंपनियों की फिल्मों ने सामाजिक चेतना से लैस फिल्मों की क्षीणधारा को यदि मुख्यधारा नहीं तो महत्वपूर्ण धारा अवश्य बना दिया। सिनेमा की यह धारा राष्ट्रीय आंदोलन के कारण उपजी विभिन्न सामाजिक- सांस्कृतिक आंदोलन के उतार-चढ़ाव को रिकॉर्ड ही नहीं कर रही थी बल्कि उन्हें गति भी दे रही थी। इस धारा का नैरंतर्य हम नितिन बोस, चंदूलाल शाह, महबूब खान, बीएन रेड्डी, विजय भट्ट,

सोहराब मोदी, मास्टर विनायक, गजानन जागीरदार, विमल राय, के ए अब्बास और चेतन आनंद की फिल्मों के रूप में 1947 के पहले और आगे तक भी पाते हैं।

बीसवीं सदी के तीसरे दशक की ढेरों फिल्मों में जमीदार और किसान, साहूकार और गरीब जन तथा मिल मालिकों और मजदूरों के संबंधों का, शोषण के तरीकों का चित्रण हुआ किंतु पूरी तरह ईमानदारी से विषयों को चित्रित करने का साहस बहुत कम लोगों ने किया। बॉम्बे टॉकीज की फिल्म *जन्मभूमि*, प्रभात की फिल्म *वहां यहां बियोंड द हीरोइन* (उस जमाने में फिल्मों के दो नाम हुआ करते थे-एक भारतीय भाषा में तथा दूसरा अंग्रेजी भाषा में) जो प्रदर्शित हुई थी, उनमें दासता के विरुद्ध क्रांतिकारी स्वरों को संजीवता के साथ ध्वनित किया गया। देश के युवा वर्ग के हृदय ओं की कसमसाहट इनमें झलकती है। इसी दौर की एक फिल्म *आजादी* थी, जिसमें देश के अंदर फैली गुलामी और दासता की मानसिकता को जड़ से उखाड़ फेंकने का अभिप्राय छिपा था।

वी शांताराम का नाम राष्ट्रवादी फिल्मकारों में अग्रणी है। वी शांताराम ने हमेशा ज्वलंत सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों को लेकर फिल्में बनाई और भरसक प्रयास किया कि सामाजिक और राजनीतिक चेतना के प्रसार में फिल्में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएं। 1937 में बनी उनकी फिल्म *दुनिया ना माने बेमेल विवाह* की समस्या को बड़ी शिद्दत के साथ उठाती है। फिल्म को उन्होंने किसी भी रोमानी हल से दूर रखा। 1939 में उन्होंने *आदमी* बनाई, जिसमें पहली बार वेश्या को एक हाड़-मांस की भावना प्रबल महिला के रूप में चित्रित करते हुए वेश्या पुनर्वास की समस्या को गंभीरता से उठाया गया। 1941 में बनी *पड़ोसी* हिंदू मुस्लिम एकता और संप्रदायिक सौहार्द के सवाल की जांच पड़ताल करती है और दिखाती है कि संकीर्ण सियासत ही भाई-भाई के बीच वैमनस्य पैदा करती हैं। उनकी सर्वाधिक उल्लेखनीय फिल्म *डॉक्टर कोटनीस की अमर प्रेम कहानी (1946)* है। यह फिल्म एक प्रसिद्ध कलाकार की कूटनीतिक समझदारी का बेहतरीन नमूना है। उन्होंने जब महात्मा शीर्षक से महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत एकनाथ के जीवन पर फिल्म बनाई तो ब्रिटिश संसद ने इसका नाम बदलने के लिए शांताराम को बाध्य किया क्योंकि फिल्म के केंद्रीय पात्र की कार्यविधि और कार्यक्रम गांधी से मिलते-जुलते प्रतीत हुए थे। फिल्म अंततः धर्मात्मा नाम से (1930-31) में प्रदर्शित हुई।

इस सदी के चौथे दशक में ही सोहराब मोदी ने भारतीय ऐतिहासिक चरित्रों जहांगीर और पोरस के जीवन की घटनाओं पर क्रमश: *पुकार* (*1939*) और *सिकंदर (1941)* फिल्में बनाई। इन फिल्मों ने राष्ट्रवादी भावनाओं को जनमानस में घनीभूत किया। 1939 में तमिल भाषा में के. सुब्रमण्यम में एक फिल्म बनाई *त्यागभूमि*। यह फिल्म एक मशहूर मुकदमे पर आधारित थी जिसका मुद्दा यह था कि क्या कोई विवाहित भारतीय स्त्री अपने पति से अलग रह सकती है? मुकदमे का निर्णय महिला के विरुद्ध होता है, किंतु ऐसी सूरत में वह अवांछित पति के साथ रहने की अपेक्षा, कांग्रेस आंदोलन में सक्रिय होकर जेल जाना पसंद करती है।

40 के दशक में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी काफी प्रभावशाली हो चली थी। बुद्धिजीवियों को तो इसने बहुत ही ज्यादा प्रभावित किया। 1936 में पी डब्ल्यू ए और एप्टा के गठन ने सिनेमा को भी गंभीर रूप से प्रभावित किया। 1930-40 मे वामपंथी सोच से जुड़े लेखक, पत्रकार, फिल्मकार सामने आए। सर्वहारा की विजय और पूंजीवाद की अनिवार्य पराजय का सिद्धांत सिनेमा के पर्दे पर भी दिखाई देने लगा। 1942 में महबूब खान ने *रोटी* बनाई। जिसमें श्रम पर केंद्रित समाज का एक चित्र प्रस्तुत किया गया था और पूंजी पर केंद्रित समाज का निस्सारता को भी रेखांकित किया गया था। 1943 में ज्ञान मुखर्जी की *किस्मत* प्रदर्शित हुई, जिसमें "*दूर हटो ए दुनिया वालो हिंदुस्तान हमारा है...*" गाना था। युद्ध काल में ब्रिटिश सरकार ने इसे अपने पक्ष में माना किंतु वास्तव में दूर हटो ए दुनिया वालों कहकर राष्ट्र वादियों ने ब्रिटेन को भी चेतावनी दी थी। विमल राय की *हमराही (1945)* इस बार की सर्वाधिक प्रगतिशील फिल्म थी । इसमें साधन संपन्न और सर्वहारा, पूंजीपति और मजदूर, समाजवाद और पूंजीवाद के बीच की समस्याओं का एक बौद्धिक हल देने का प्रयास किया गया था। रविंद्र नाथ टैगोर का गीत *जन-गण-मन अधिनायक...* इस फिल्म में पहली बार इस्तेमाल किया गया था, जो 1947 में स्वतंत्रता के पश्चात भारत का राष्ट्रगान बना। 1946 में एप्टा के बैनर तले ख्वाजा अहमद अब्बास ने *धरती के लाल* और चेतन आनंद ने *नीचा नगर* बनाई। यह दोनों फिल्में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हुई। *धरती के लाल* ने बंगाल के भीषण अकाल को पृष्ठभूमि में रखकर, उससे उत्पन्न परिस्थितियों में मानवीय मूल्यों के अध:पतन और इसके लिए जिम्मेदार व्यवस्था पर तीखा व्यंग किया।[12]

घर में देवकी बोस ने प्रगतिवादी विचारधारा को स्वर प्रदान किए थे । प्रमुख रूप से अत्याचार, हिंसा और दमन के विरुद्ध इस में आवाज उठाई गई थी। इसके संवाद और गीत स्पष्टत: राष्ट्रीय भावनाओं का परिचय देते हैं। इसके चलचित्र की एक गीत की पंक्तियां देखिए-

मीठे गुलामी, लेंगे आजादी,

देश का झंडा ऊंचा कर।

अपना देश है अपना घर।।

40 करोड़ में, 40 करोड़ भारतवासियों की स्वाधीनता तथा समाज के नवोत्थान कि भावनाओं को संजोया गया था। अपने देश में असामाजिक तत्वों, विशेषकर तस्कर व्यापार से राष्ट्रीय हित को नुकसान पहुंचाने वाले भारतवासियों की भ्रष्टाचार फैलाने वाली दुष्टप्रवृत्ति पर प्रहार किया गया था । *पहला आदमी* और *समाधि* चल चित्रों का संबंध *आजाद हिंद फौज* के राष्ट्रीय अभियानों को ग्रहण करने वाले कथानकों से था जिसमें मातृभूमि के प्रति भारतीयों के प्रेम की उत्कृष्ट भावना का चित्रण किया गया था।[13]

फिल्मों के गीतों में विद्रोह और राष्ट्रप्रेम

'कहीं पे निगाहें, कहीं पे निशान' , आर पार (1954) का लोकप्रिय गीत , हालांकि एक अन्य संदर्भ में गाया गया, ग्यारह साल पहले आए एक और गीत का वर्णन कर सकता था – एक ऐसा गीत जिसे उन गीतों के बीच एक स्वर्ण मानक माना जाता है जो प्रेरित करते हैं स्वतंत्रता आंदोलन।

टॉकीज की किस्मत (1943) से '*दूर हटो ऐ दुनियावालो, हिंदुस्तान हमारा है*' , द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जारी किया गया था, जाहिरा तौर पर उन जर्मनों और जापानियों को संबोधित किया गया था जिनके साथ ब्रिटेन युद्ध में था – *शूरू हुआ है जंग तुम्हारा, जाग उठा हिंदुस्तानी, तुम न किसी के आगे झुकना, जरमन हो या पानी, आज सब के लिए हमारा याही कौमी नारा है* । किसी तरह या गाना सेंसर से पास हो गया। लेकिन जनता बेहतर जानती थी। महात्मा गांधी द्वारा भारत छोड़ो आंदोलन का आह्वान करने के छह महीने से भी कम समय के बाद, गीत का वास्तविक लक्ष्य – अनिल बिस्वास द्वारा एक मार्शल ट्यून के रूप में रचित – स्पष्ट था। ब्रिटिश शासन के खिलाफ देशभक्ति का स्वर लोगों के सामने तुरंत स्पष्ट हो गया। किस्मत की स्क्रीनिंग के समय , रीलों को रिवाउंड किया जाएगा और जनता की मांग पर गाने को कई बार बजाया जाएगा। सिनेमा हॉल में बैठे दर्शक गीत में दिखाए गए आवेशित दर्शकों से अलग नहीं थे – ऐसा गीत का प्रभाव था।

गीत की अभूतपूर्व लोकप्रियता ने गीतकार कवि प्रदीप और संगीतकार अनिल बिस्वास को राजद्रोह के आरोप में ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा गिरफ्तार किए जाने से बचने के लिए भूमिगत होने के लिए मजबूर किया।

वे केवल तभी फिर से सामने आ सकते हैं जब सरकार को यह बताया गया कि यह गीत एक्सिस सदस्यों – जर्मनी और जापान के खिलाफ निर्देशित किया गया था – और वास्तव में, ब्रिटिश समर्थक था (जो निश्चित रूप से ऐसा नहीं था)। दिलचस्प बात यह है कि गाने में दिखाए गए भारत के नक्शे में बर्मा भी शामिल है, जो छह साल पहले 1937 में भारतीय साम्राज्य से अलग हो गया था।

किस्मत देशभक्ति वाली फिल्म नहीं थी। यह एक आउट-एंड-आउट थ्रिलर थी। इसमें मनोरंजन को खत्म करते हुए एक देशभक्तिपूर्ण पंच पैक करने के लिए गीत शामिल था। ऐसी कई फिल्में थीं, जो जनता को सच्चा संदेश देने के लिए, जो फिल्म या गीत के वास्तविक संदेश से अवगत होने के लिए पर्याप्त समझदार थी, हमेशा सतर्क सेंसर के रडार के तहत पर्ची के लिए रूपक, सहज ज्ञान, प्रतीकात्मकता, परोक्ष संदर्भ का उपयोग करती थी।

1938 की शुरुआत में, महबूब खान द्वारा निर्देशित एक कॉस्ट्यूम ड्रामा फिल्म *वतन* रिलीज़ हुई थी। मध्य एशिया में सेट की गई कहानी, बोल्शेविकों और कोसैक्स को शामिल करते हुए, डीकोसैकाइज़ेशन नीति पर आधारित थी।

स्वतंत्रता के लिए कोसैक की लड़ाई उस समय भारत में ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता की लड़ाई का एक प्रतीकात्मक संदर्भ था। इसका एक गाना था – '*जहां तू है वही मेरा वतन है*' , जिसे अनिल बिस्वास ने कंपोज किया था। 1941 में, सोहराब मोदी की *सिकंदर* स्क्रीन पर हिट हुई। इसमें '*जीते देश हमारा, भारत है घर बार हमारा, भारत है संसार हमारा*' गाना था । भले ही फिल्म में यह ग्रीक शासक सिकंदर की ताकतों के खिलाफ जीत की प्रार्थना है, इस गीत ने भारतीयों में राष्ट्रवादी भावना को हवा दी।

औपनिवेशिक शासन के तहत, जब राष्ट्रीय आंदोलन अपने चरम पर था, जनता समझ गई थी कि 'जीत' किससे छीनी जानी है।

कभी-कभी, यह काम नहीं करता था। 1931 में, शांताराम की फिल्म स्वराज्यचे तोरण (पहाड़ियों की गड़गड़ाहट) के शीर्षक में '*स्वराज*' और *छत्रपति शिवाजी* को झंडा फहराते हुए फिल्म के पोस्टर पर प्रतिबंध का खतरा पैदा हो गया, क्योंकि 'स्वराज' का उपयोग करना देशद्रोही माना जाता था। यह फिल्म मराठा सम्राट शिवाजी के सैन्य अभियानों पर आधारित एक ऐतिहासिक फिल्म थी। फिल्म का नाम बदलकर *उदयकल* कर दिया गया । सेंसर ने निर्माताओं को कई अन्य बदलाव दिए, उनमें से एक सिंहगढ़ किले पर भगवा झंडा फहराना था।

स्वतंत्रता-पूर्व के गीतों और फिल्मों ने स्वतंत्रता आंदोलन को प्रेरित किया

इससे पहले 1921 में मूक युग में, *भक्त विदुर* भारत में प्रतिबंधित होने वाली पहली फिल्म बनी थी। यह फिल्म भारत में रॉलेट एक्ट पारित होने के ठीक बाद आई थी। हिंदू पौराणिक चरित्र विदुर के चरित्र को महात्मा गांधी के व्यक्तित्व पर चित्रित किया गया था। फिल्म में ऐसे दृश्य थे जहां विदुर गांधी की तरह दिखाई दिए, गांधी *टोपी और खादर* पहने हुए । फिल्म में भारत की कई समकालीन राजनीतिक घटनाओं को दिखाया गया है। नतीजतन, फिल्म पर प्रतिबंध लगा दिया गया क्योंकि सेंसर ने माना कि चरित्र विदुर नहीं, बल्कि महात्मा गांधी थे। सेंसर ने यह भी माना कि फिल्म सरकार के खिलाफ असंतोष को उत्तेजित करेगी और लोगों को असहयोग के लिए उकसाएगी।

स्वतंत्रता-पूर्व युग के गीतों और फिल्मों ने स्वतंत्रता आंदोलन को प्रेरित किया, राष्ट्रवादी आग में ईंधन डाला, देश के लिए प्रेम की भावनाओं का आह्वान किया, देशभक्ति की भावना जगाई। लेकिन वे न तो प्रसिद्ध हैं, न ही उनके योगदान को पर्याप्त रूप से स्वीकार किया गया ।

आजादी के बाद के देशभक्ति के गीतों को हम सभी जानते हैं, लेकिन 1947 से पहले के उनके समकक्ष, इतना नहीं। लेकिन उनकी भूमिका को जानने और सराहना करने की जरूरत है।

उनकी पहुंच हर घर तक फैली हुई थी, किसी भी अन्य मंच से कहीं अधिक, यहां तक कि राजनीतिक लामबंदी भी। कलम, गीत, संगीतकार, गायक अहिंसक राजनीतिक आंदोलन, या तलवार (जब भी शायद ही कभी इस्तेमाल किया जाता है) के रूप में स्वतंत्रता के लिए लोगों की लड़ाई को प्रेरित करने में कम शक्तिशाली नहीं थे। इस अवधि के दौरान कई फिल्में और उससे भी अधिक गाने जारी किए गए, जो या तो स्पष्ट रूप से या परोक्ष रूप से, अंग्रेजों को खलनायक के रूप में चित्रित करते थे। सेंसर ने इस तरह के संदेशों को दबाने की हर संभव कोशिश की, लेकिन ज्यादातर फिल्में और गाने छूट गए। 1940 के दशक के मध्य से, हवा में स्वतंत्रता के साथ, ब्रिटिश सेंसर की पकड़ ढीली हो गई, और फिल्में और गाने अधिक प्रत्यक्ष और बोल्ड हो गए।

एक गाना जो शायद बहुतों को पता होगा वह है बंधन (1940) का ' *चल चल रे नौजवान, कहना मेरा मान*' □ कवि प्रदीप गीतकार थे और संगीत निर्देशक रामचंद्र पाल थे। फिल्म में अशोक कुमार और लीला चिटनिस ने अभिनय किया था। *एक फूल दो माली (1969)* में इस गाने की पैरोडी की गई थी और शायद तब ज्यादातर लोगों ने इसे पहली बार सुना था। यह गाना काफी लोकप्रिय हुआ था। इतना कि जब फिल्म दिल्ली में खुली तो दर्शक चाहते थे कि गाना फिर से दिखाया जाए। तो, फिल्म खत्म होने के बाद इसे फिर से चलाया गया। यह बच्चों के लिए एक प्रेरणादायक और मार्चिंग गीत है। इसी वजह से इसे उस समय की हिंदी स्कूली किताबों में शामिल किया गया था। गीत के कई संस्करण थे – सबसे प्रसिद्ध बाल कलाकार सुरेश द्वारा गाया गया। गीत का प्रभाव इतना महत्वपूर्ण था कि जब एस मुखर्जी, अशोक कुमार, कवि प्रदीप और अन्य ने बॉम्बे टॉकीज छोड़ दिया और फिल्मिस्तान स्टूडियो की स्थापना की,

तो 1944 में उनकी पहली फिल्म का शीर्षक 'चल चल रे नौजवान' था ! इस फिल्म में भी गुलाम हैदर (जो आजादी के बाद पाकिस्तान चले गए) के संगीत के लिए अशोक कुमार द्वारा गाया गया एक प्रेरणादायक गीत 'जय भारत देश, तेरी जय, भारत के नौजवानों चलो एक राह पर, ऐ हिंदू मुसलमानों चलो एक राह पर' था। कवि प्रदीप के बोल। इस गीत ने, कई अन्य लोगों की तरह, हिंदू-मुस्लिम एकता की वकालत की।

गुलाम हैदर ने फिल्म *भाई (1944)* में एक और गीत की रचना की – श्याम सुंदर द्वारा गाया गया 'हिंदू मुस्लिम सिख इस्साई, आप में है भाई भाई' । एक साल पहले, पूनजी (1943) में, उन्होंने शमशाद बेगम द्वारा गाए गए 'हे माता अब जाग उठे हैं हम' की रचना की। पहले आप (1944) में नौशाद के संगीत के लिए मोहम्मद रफी द्वारा गाया गया एक गाना ' हिंदुस्तान के हम हैं, हिंदुस्तान हमारा, हिंदू मुस्लिम दोनो की, आंखों का तारा' था।

जब भारतीय फिल्मों के दो शीर्षक थे

यहां तक कि नूरजहां ने *हमजोली* (1946) में एक देशभक्ति गीत गाया – 'ये देश हमारा प्यारा, हिंदुस्तान जहां से प्यारा' हाफिज खान द्वारा रचित। एक साल बाद, वह पाकिस्तान चली गईं और अपनी पहली पाकिस्तानी फिल्म चैन वे (1951) में अभिनय करा, जो 1950 और 1960 के दशक के एक प्रसिद्ध अभिनेता संतोष कुमार के साथ थीं (उनका एक भाई दर्पण था – उस युग का एक और प्रसिद्ध अभिनेता)

वास्तव में, नूरजहाँ ने बड़ी माँ (1945) में भी अभिनय किया, जो द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि के खिलाफ थी, जिसमें लता मंगेशकर द्वारा गाए गए दो देशभक्ति गीत थे। लता जी ने फिल्म में भी अभिनय किया – 'माता, तेरे चरणों में गुजर जाए उमरिया ' (ईश्वरलाल के साथ) और 'जननी जन्मभूमि... तुम हो मां, बड़ी मां ' (मीनाक्षी शिरोडकर के साथ)। फिल्म में आशा भोंसले भी छोटी भूमिका में थीं। यह इकलौती ऐसी फिल्म है जिसमें तीनों गायिकाएं एक साथ अभिनय कर रही थीं। लता ने ऐसे और भी गाने गाए। सोना चंडी (1946) में – दूसरा नाम भाई भाई – उन्होंने डीसी दत्ता के नेतृत्व में 'प्यारे बापू के चारणों की ले लो कसम, प्यारे प्यारे तिरंगे की ले लो कसम' गया। उपरोक्त फिल्म के दो शीर्षक थे। उन दिनों ' यूआरएफ ' के बीच में दो शीर्षक वाली फिल्में होना कोई असामान्य बात नहीं थी, जैसे कि सत्य की रक्षा ' उर्फ ' हरिश्चंद्र तारामती; एहद ए इंतकाम ' उर्फ ' दिलेर लड़की ।

देव आनंद की पहली फिल्म हम एक हैं (1946) में हुस्नलाल भगतराम द्वारा रचित एक गीत 'हम जग उठे हैं तो कर' था। यहां तक कि 'फियरलेस नादिया', जो अपनी स्टंट फिल्मों के लिए प्रसिद्ध थी, में भी शामिल थी। होमी वाडिया द्वारा निर्देशित उनकी लुटारू ललना (1938) में मास्टर मोहम्मद (संगीत निर्देशक) और सरिता द्वारा गाया गया 'जुग जग चमक हिंद का तारा, झंडा ऊंचा रहे हमारा' था। देवी जो बहुत लोकप्रिय हुई। स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा गाया गया, 'झंडा ऊंचा रहे हमारा' । इसका एक और गाना था- 'जुग जग चमके हिंद का तारा' जिसे सरिता देवी ने गाया था। मास्टर मोहम्मद ने पहले वीर भारत (1934) और जय भारत (1936) के लिए देशभक्ति के गीतों की रचना की थी ।

अशोक कुमार और देविका रानी अभिनीत बॉम्बे टॉकीज की जन्मभूमि (1936) में देविका रानी द्वारा गाया गया 'माता ने है जन्म दिया, जीने के लिए' था। इसका एक और गीत था: अशोक कुमार द्वारा गाया गया 'जय जय जननी जन्मभूमि' ।बॉम्बे टॉकीज ने एक और फिल्म बनाई – अंजान (1941) जिसमें अशोक कुमार और देविका रानी ने अभिनय किया था, जिसमें अशोक कुमार द्वारा गाया गया गीत 'खीचो कमान खीचो, ओ भारत मां के नौजवान' था। संगीत निर्देशक पन्नालाल घोष (बांसुरी वादक) थे और गीतकार कवि प्रदीप थे।

बिमल रॉय द्वारा निर्देशित न्यू थिएटर्स हमराही (1945) में भारत का राष्ट्रगान बनने से पहले ही रवींद्रनाथ टैगोर की 'जन गण मन' शामिल थी। इस गीत में राष्ट्रगान से अधिक छंद हैं। फिल्म में एक और गाना था- 'बढ़े चलो, बढ़े चलो, बढ़े चलो जवानो', जिसे राय चंद बोराल ने कंपोज किया था। एक कदम (1947) इतना आगे निकल गया कि इसके पोस्टर पर नेताजी सुभाष चंद्र बोस को दिखाया गया।

और सूची निम्न है:

- अमर प्रेम (1936) – 'हमारा प्यारा हिंदुस्तान, प्यारा हिंदुस्तान'
- जय भारत (1936) – 'हम वतन के वतन हमारा, भारत माता जय जय जय'
- भारत की बेटी (1936) , अन्य नाम: स्नेह लता – 'हे धन्या तू भारत नारी, महिमा है तेरी न्यारी'
- समाज पाटन (1937) , अन्य नाम: ज़ालिम ज़माना – 'जागो जागो भारतवासी, एक दिन तुम द जगतगुरु'
- हिज हाइनेस (1937) – 'भारत है सुख चैन हमारा, अपना वतन है सबको प्यारा'
- तूफान एक्सप्रेस (1938) – 'धरती माता बालक तेरे चरन में शीश नईं'
- ब्रह्मचारी (1938) – 'चलो सिपाही, करो सफाई, हाथ धरो झाड़ू'
- कर्म वीर (1938) , अन्य नाम: मर्द बानो – 'सारे देशो से न्यारी, प्यारी भारत माता हमारी'
- वसियात (1940) – 'हिंद माता की तुम संतान हो, नौजवानों तुम वतन की शान हो'
- आज का हिंदुस्तान (1940) – 'चरखा चलाओ बहनें, काटो ये कच्चे धागे'
- अमृत (1941) – 'जागो जवानो, जागो जवानो, नवजुग आया थे
- कोषिश (1943) – ' ऐ हिंद के सपूतों, जागो, हुआ सवेरा, हिंदू मान या मुसलमान, हम सब हैं भाई भाई' और 'हिंदुस्तान वालों, हिंदुस्तान वालों' – दोनों गाने जीएम दुर्रानी द्वारा गाए गए हैं
- महबूब खान की तकदीर (1943) – शमशाद बेगम द्वारा गाया गया 'माता माता, मेरी माता, भारत माता' संगीत निर्देशक रफीक गजनवी थे जो बाद में पाकिस्तान चले गए।
- मुस्कराहत (1943) – सी रामचंद्र द्वारा रचित 'भारत देश हमारा, हरा भरा हरियाली'
- चांद (1944) – 'वतन से चला है वतन का सिपाही' उनकी पहली फिल्म हुस्नलाल भगतराम द्वारा रचित थी।
- परिंदे (1945) – ' दुबते भारत को बचाओ, मेरे करतार' जोहराबाई अंबलेवाली द्वारा गाया गया
- नसीब (1945) – 'हम पंछी है आज़ाद, हममें कोई पिंजारे मैं क्यों डाले'
- गुलामी (1945) – 'ऐ वतन मेरे वतन, तुम पे मेरी जान निसार'
- स्वयं से सुंदर देश हमारा (1945) – अंग्रेजी नाम: मातृभूमि की पुकार – 'देश हमारा, देश हमारा, देश हमारा, देश हमारा स्वर्ग से सुंदर, देश हमारा'
- पन्नाबाई (1945) – 'चले मुसाफिर, खाक वतन की लेकर, देश पराई'
- मानसरोवर (1946) – एसएन त्रिपाठी द्वारा रचित 'जय हिंद जय हिंद, हिंद की कहानियां, ये हिंद की कहानियां'
- जंजीर (1947) – 'नाच रही थी भारत माता, आजादी के आंगन में'
- अहिंसा (1947) – 'सदियों से है गुलाम, जन्मभूमि हमारी'; 'आजाद है हम आज से, जेलों के ताले तोड़ दो, अंग्रेजी भारत छोड़ दो' (चितलकर द्वारा गाया गया)। संगीत निर्देशक थे सी रामचंद्र[14]

ये सभी गीत 'भारत माता', 'वतन', 'हिंद', 'धरती माता', 'हिंदुस्तान' से परिपूर्ण थे।

फिल्मों ने न केवल देशवासियों को जोश और जोश के साथ आजादी के लिए लड़ने के लिए प्रेरित किया, बल्कि भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयों के खिलाफ भी बात की। स्वतंत्रता का मतलब न केवल ब्रिटिश अधीनता को उतारना था, बल्कि भारतीय समाज के उन प्रतिगामी पहलुओं को प्रकाशित करना भी था, जिनके खिलाफ महात्मा गांधी और अन्य नेता लड़ रहे थे। फिल्मों और गानों ने चरखा, खादी, स्वदेशी वस्तुओं को भी बढ़ावा दिया। ऐसा ही एक गाना था आज का हिंदुस्तान (1940) में '*चरखा चलाओ बहनो*' ।

दुनिया ना माने (1937) – वी शांताराम की एक सामाजिक क्लासिक, ने समाज में महिलाओं के इलाज, विशेष रूप से बाल विवाह और दहेज के खतरे के खिलाफ आवाज उठाई। इसमें 'आह, भारत प्यारा है, है कौन जग से न्यारा' गाना था ।

ब्रांडी की बॉटल (1939) ने शराब के सेवन की आलोचना की और गांधीवादी नैतिकता और आत्म-अनुशासन को प्रोत्साहित किया। घर की रानी (1940) ने पश्चिमी परंपराओं को अपनाने के दुष्परिणामों को दिखाया। अछूत (1940) ने अस्पृश्यता के खिलाफ गांधी के आंदोलन को बढ़ावा देने की मांग की।

महान मराठी धार्मिक कवि और विद्वान संत एकनाथ पर आधारित जाति व्यवस्था पर वी शांताराम के धर्मात्मा (1935) को मूल रूप से 'महात्मा' शीर्षक दिया गया था । इसका नाम बदलने की आवश्यकता के बारे में परस्पर विरोधी खाते हैं। एक खाता यह है कि बॉम्बे राज्य के तत्कालीन गृह मंत्री कन्हैयालाल मानेकलाल मुंशी ने शांताराम पर स्वार्थी उद्देश्यों के लिए महात्मा गांधी के नाम का शोषण करने का आरोप लगाया था। दूसरी वजह यह है कि सेंसर की आपत्ति के चलते ऐसा किया गया।

लेकिन अंग्रेज चुप नहीं बैठे थे। देशभक्तिपूर्ण हिंदी फिल्मों के प्रतिवाद के रूप में, अंग्रेजों ने भारतीयों को खराब रोशनी में दिखाते हुए अंग्रेजी भाषा की फिल्में जारी की।

ड्रम (1938) ने सभी भारतीयों को अपने ब्रिटिश आकाओं के खिलाफ अविश्वसनीय और षडयंत्रकारी के रूप में दिखाया। बंबई शहर ने फिल्म की स्क्रीनिंग के खिलाफ विद्रोह कर दिया जब 'फ्रंटियर गांधी' खान अब्दुल गफ्फार खान ने इस पर प्रतिबंध लगाने की मांग की। द लाइव्स ऑफ़ ए बंगाल लांसर (1935) को लाहौर में मुस्लिम समुदाय द्वारा मुसलमानों के अपमानजनक चित्रण के लिए कड़ी आपत्तियों का सामना करना पड़ा।

चल चल रे नौजवान' , 1947 के बाद, 'नन्हा मुन्हा राही हूं' (भारत का पुत्र, 1962) का नेतृत्व किया । एक ने स्वतंत्रता आंदोलन को प्रेरित किया, और इसकी प्राप्ति के बाद, दूसरे ने राष्ट्र के प्रति प्रेम जगाया। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और दोनों को इतिहास में अपना उचित स्थान चाहिए। लेकिन अज्ञानता से, गरीबी से, बीमारी से, असमान समाज से 'आजादी' अभी भी प्रगति पर है। □तू आगे बढ़े जा, आफत से लड़े जा, आंधी हो या तूफान, फटा हो आसमान, रुकना तेरा काम नहीं, चलना तेरी शान, चल चल रे नौजवान□ – अभी भी प्रासंगिक है।[15]

सन 1947 में रंजीत मूवीटोन के चलचित्र *छीन ले आजादी* के साथ ही भारतवासियों ने अंग्रेजों के हाथ से वास्तव में आजादी छीन ली और देश स्वतंत्र हो गया। इन चल चित्रों की कथाएं, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति करने वाली हुई थी। इस प्रकार यह पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि भारत के स्वाधीनता संघर्ष में हिंदी सिनेमा का अभूतपूर्व एवं महत्वपूर्ण योगदान है।

संदर्भ सूची:-

1. हिंदी सिनेमा- यूनिट-1, डॉ0 महेंद्र प्रजापति,(हंसराज कॉलेज, दिल्ली) पृष्ठ संख्या-1।
2. ज्ञानेश उपाध्याय, बहुवचन 39, अक्टूबर-दिसंबर 2013, पृष्ठ संख्या-10।
3. हिंदी सिनेमा और उसका अध्ययन: यूनिट- 2, डॉ0 महेंद्र प्रजापति, (हंसराज कॉलेज, दिल्ली),पृष्ठ संख्या-1।
4. स्वाधीनता संघर्ष में हिंदी सिनेमा का योगदान, डॉ अरुण कुमार श्रीवास्तव, स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी, संपादक- डॉ मीना गौतम, पृष्ठ संख्या-31।
5. स्वाधीनता संघर्ष में हिंदी सिनेमा का योगदान, डॉ अरुण कुमार श्रीवास्तव, स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी, संपादक- डॉ मीना गौतम, पृष्ठ संख्या-31।
6. आजादी की लड़ाई में हिंदी सिनेमा, चंद्रभूषण गुप्त 'अंकुर', स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी, संपादक- डॉ मीना गौतम, पृष्ठ संख्या-38।
7. स्वाधीनता संघर्ष में हिंदी सिनेमा का योगदान, डॉ अरुण कुमार श्रीवास्तव, स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी, संपादक- डॉ मीना गौतम, पृष्ठ संख्या-33।
8. स्वाधीनता संघर्ष में हिंदी सिनेमा का योगदान, डॉ अरुण कुमार श्रीवास्तव, स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी, संपादक- डॉ मीना गौतम, पृष्ठ संख्या-34।
9. आजादी की लड़ाई में हिंदी सिनेमा, चंद्रभूषण गुप्त 'अंकुर', स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी, संपादक- डॉ मीना गौतम, पृष्ठ संख्या-39।
10. 1947,सिर्फ आजादी का नहीं, फिल्मकारों की अभिव्यक्ति की आजादी का साल था, खालिद मोहम्मद, लेखक, फिल्म क्रिटिक, 15 अगस्त 2021, द क्विंट 'हिंदी'।
11. आजादी की लड़ाई में हिंदी सिनेमा, चंद्रभूषण गुप्त 'अंकुर', स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी, संपादक- डॉ मीना गौतम, पृष्ठ संख्या-39।
12. आजादी की लड़ाई में हिंदी सिनेमा, चंद्रभूषण गुप्त 'अंकुर', स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी, संपादक- डॉ मीना गौतम, पृष्ठ संख्या-43।
13. स्वाधीनता संघर्ष में हिंदी सिनेमा का योगदान, डॉ अरुण कुमार श्रीवास्तव, स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी, संपादक- डॉ मीना गौतम, पृष्ठ संख्या-35।
14. 'हाउ डिड इंडियन मूवीस एंड सोंग्स इंस्पायर्स अवार्ड फ्रीडम स्ट्रगल', अजय मनकोटिया, पूर्व आईआरएस अधिकारी, 14 अगस्त 2020, द क्विंट 'इंग्लिश'।
15. 'हाउ डिड इंडियन मूवीस एंड सोंग्स इंस्पायर्स अवर्स फ्रीडम स्ट्रगल', अजय मनकोटिया, पूर्व आईआरएस अधिकारी, 14 अगस्त 2020, द क्विंट 'इंग्लिश'।